# कर्बला के अमर शहीद का बरसाबरस शोक

**लेखक : आयतुल्लाहिल उज़्मा सैय्यदुल उलमा मौलाना अली नक़ी नक़वी**

**अनुवादक : जनाब मु0 र0 आबिद, लखनऊ**

संसार में दुनिया से उठ जाने वाले का शोक, जो उसके सबसे निकट के सम्बन्धी करते हैं, वह बस कुछ दिन होता है। लेकिन ये सिर्फ़ कर्बला के अमर शहीद हैं जिनका शोक हर साल होता है। जहां जहां उनके नाम और काम के जानने वाले मिलते हैं वहां वहां यह शोक होता है। उनमें लगभग हर आदमी की ओर या कम से कम हर घर या घराने में यह शोक मनाया जाता है, और ऐसे जैसे यह दुख घटना उसी साल हुई हो; और हरेक उस जोश वलवले से मनाता है जिस जोश से वह अपने किसी सम्बन्धी का शोक नहीं मनाता। आख़िर इसका कोई कारण होना चाहिए! जो पास का कारण किसी के मन में तुरन्त आ सकता है वह मज़हबी श्रद्धा है। मगर याद रखना चाहिए कि किसी फ़िरक़े के भेद के बिना हर मुसलमान को मज़हबी श्रद्धा इमाम हुसैन अ. के पूर्वजों से ज़्यादा है इनमें पहली ज़ात हज़रत मुहम्मद साहब स. की है, खुद इमाम हुसैन अ. से ज़्यादा (श्रद्धा की) है। इसी तरह आपके पिता श्री हज़रत अली अ. और माताश्रीमती हज़रत फ़ातिमा ज़हरा स. की भी श्रेणी आपसे आगे है, फिर जहां तक शिया फ़िरक़े का सम्बन्ध है इमाम हुसैन अ. की अपेक्षा हज़रत इमाम हसन अ. से भी उसकी मज़हबी श्रद्धा किसी तरह कम नहीं मगर जहां तक दुख शोक की अभिव्यक्तियों का सम्बन्ध है वह जिस शान से इमाम हुसैन अ. के लिए होती हैं उस तरह उनके बड़ों के लिए भी नहीं होतीं।

इन महाशयों के जन्नतावसान की तिथियों पर बेशक शिया मजलिसें (शोक–सभाएं) करते हैं मगर इस तरह का दुःख शोक मातम निस्सन्देह उन महाशयों में से किसी का भी नहीं होता जो इमाम हुसैन अ. के अगुवा हैं और न ही बाद के मासूम (निष्पाप) इमामों में से किसी का होता है जो शिया धर्म मूल्यों से इमाम हुसैन अ. की तरह मज़हबी श्रद्धा के केन्द्र हैं।

इससे साफ़ साबित हो जाता है कि इसका कारण मज़हबी श्रद्धा नहीं है। यही राज़ है कि इमाम हुसैन अ. के दुःख में शियों के साथ वे भी शरीक होते हैं जो शिया क्या मुसलमान भी नहीं हैं। अगर इस शोक का श्रोत मज़हबी श्रद्धा होती तो यह शोक उन्हीं लोगों में रहता जो यह श्रद्धा रखते हैं। मगर इसका सम्बन्ध क्योंकि मज़हबी श्रद्धा से नहीं बल्कि किसी प्राकृतिक (Natural) नियम से है, जिसका प्रभाव धर्मजाति के भेद से सर्वोपरि होता है, इसलिए हज़रत इमाम हुसैन अ. के ग़म में शियों के साथ संसार शरीक है।

बात यह है कि हज़रत इमाम हुसैन अ. ने सत्य भक्ति के रास्ते वह बलिदान दिया है जिसका उदाहरण न उनके पहले कोई सामने आया था और न उनके बाद कोई उदाहरण मिलता है। फिर इस बलिदान के चलते आप पर जो यात्नाएं और दुःख पड़े वह हर मनुष्य को जिसके सीने में पत्थर नहीं बल्कि दिल है, प्रभावित कर देते हैं। दिल का असर आँख पर पड़ता है और आँखें आँसू बहा कर उस अमर शहीद को श्रद्धान्जिलि  देती हैं जिसने सत्य के मार्ग में इन दुःखों को झेला।

यह हज़रत इमाम हुसैन अ. का दुःख नहीं है, मानव के यथार्थवाद और सत्यानिष्ठा का एलान है, अत्याचार से घृणा का ऐलान है और अत्याचार के विरूद्ध पीड़ितों का विजय शंखु है। सत्य सतत अस्तित्व रखता है और अत्याचार से घृणा मानव प्रकृति के न बदलने वाले मूल्यों में से है, इस लिए हुसैन का शोक भी अमर जीवन रखता है और समय के बदलने के साथ उसके रूप चाहे बदल जायें परन्तु उसकी आत्मा में बदलाव असम्भव है। अब आइये न जानने वालों के लिए हज़रत इमाम हुसैन अ. के व्यक्तित्व और उनके

कारनामों के बारे में बतायें कि वे इस दुःख शोक से परिचित हों जिसे भरपूर तरह से मानवता ने अपना दिल चीर कर उसकी परतों में जगह दी है।

हज़रत इमाम हुसैन अ. इस्लाम प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद स. के बेटे थे। इस्लाम का असली सत यही है कि अल्लाह के मुक़ाबले में किसी शक्ति के सामने सर न झुकाया जाये। शाम के राज्य में यज़ीद, जो अपने बाप मुआविया के बाद बादशाह हुआ था, अपने को मुहम्मद साहब स. का उत्तराधिकारी कहलवाता था फिर भी हर प्रकार के दुष्कर्म और दुराचार खुले आम करता था और हज़रत इमाम हुसैन अ. से यह चाहता था कि आप उसकी बैअत (आधीनता की शपथ/प्रतिज्ञा) कर लें यानि उसे मुहम्मद साहब स. का वैध्य उत्तराधिकारी मान लें और बिना शर्त उसके आज्ञा पालन का क़रार कर लें। हज़रत इमाम हुसैन अ. की ओर से उसकी बैअत हो जाने के माने थे कि जनता में धर्म मज़हब का मान मिट जाय और वे सारे काले करतूत जिनमें यज़ीद लिप्त था, मुसलमानों के बीच संविधान की हैसियत से सही समझे जाने लगें। इसलिए हज़रत इमाम हुसैन अ. ने सारे नतीजों को सामने रखते हुए यज़ीद की बैअत ठुकरा दी, परन्तु आपने अपनी ओर से युद्ध का क़दम नहीं बढ़ाया बल्कि अपने नाना के प्रवास और अपने जन्म के स्थान मदीने को छोड़कर काबा धाम की ओर चले और मक्के में शरणार्थी (Refugee) की हैसियत से ठहरे। यह कार्यात्मक एलान था कि आपको किसी का ताज व राजसिंहासन लेना नहीं है, न अपनी ओर से युद्ध करना है। आपको तो असत्य के समर्थन से अलग थलग रहते हुए जीवन बिताना है और 'जियो और जीने दो' के तरीक़े पर चलना है मगर यज़ीद की ओर से हाजियों के भेस में आदमी भेजे गये कि हज की प्रक्रियाओं के बीच किसी न किसी तरह इमाम हुसैन अ. को शहीद कर दें या आपको पकड़ लें। इस लिए हज से सिर्फ़ एक दिन पहले जब दुनिया हज के लिए जमा हो रही थी, रसूल स. का बेटा मक्का छोड़ रहा था। आपके साथ कोई सेना न थी बल्कि आपके साथ ऐसा क़ाफ़िला था जिसमें पर्देदार बीबियां और छोटे छोटे बच्चे थे। यह भी इसका कार्यात्मक एलान था कि आप किसी पर हमला करने या किसी राज्य पर कब्ज़ा जमाने नहीं जा रहे थे। मगर आप इराक़ की सीमाओं में जो पंहुचे तो आपको पकड़ने के लिए यज़ीदी राज की ओर से सेना आ गयी। इस सेना ने आपको कर्बला के मैदान में रोक लिया और फिर इराक़ प्रान्त की राजधानी कूफ़े से जहां का राज्यपाल इब्ने ज़ियाद था, फौजों पर फ़ौजें आना शुरू हो गयीं। यहां तक कि चार पांच दिन के अन्दर कम से कम तीस हज़ार की सेना इमाम हुसैन और उनके छोटे से दल से मुक़ाबले के लिए आगई। सातवीं मुहर्रम से फ़ुरात नहर पर सेना का पहरा बैठ गया कि हज़रत इमाम हुसैन अ. के साथ का कोई आदमी पानी न ला सके। अब रसूल स. के बेटे और उनके साथियों पर प्यास छा गयी और छोटे छोटे बच्चे हाय प्यास! हाय प्यास!! की आवाज़ें उठाने लगे।

नवीं मुहर्रम की सैपहर को इब्ने ज़ियाद का पत्र उमर इब्ने साद के पास आया कि अब देर नहीं होना चाहिए, या तो हुसैन अ. यज़ीद की बैअत करें या फिर उनपर हमला करके उन्हें क़त्ल कर दिया जाय। इब्ने साद ने पत्र पढ़ते ही खुद कह दिया कि हुसैन बैअत तो नहीं करेंगे, उनके सीने में उनके बाप का दिल है, यानि किसी सांसारिक शासक की बैअत करना रसूल स. के घराने के सदा के उसूल के ख़िलाफ़ है। इस पर फ़ौरन उसने हमले का हुक्म दे दिया, मगर हज़रत इमाम हुसैन अ. ने अपने भाई हज़रत अब्बास को भेजकर एक रात की मुहलत (अवकाश) ले ली। इस लिए नहीं कि आपको इस एक रात में यज़ीद की बैअत के मसले पर फिर से विचार करना था, नहीं वह तो विचार का विषय था ही नहीं बल्कि आप चाहते थे कि आप आख़िरी बार पूरी रात ईश्वर की अराधना में बिता लें। फिर अपने साथियों को खतरे के निश्चित होने के बाद अवसर दे दें कि अगर आपका साथ छोड़कर जाना चाहें तो चले जायें। मगर इमाम हुसैन अ. के साथी कर्त्तव्य के ऐसे पहचानने वाले धर्मनिष्ठ थे कि उन्होंने इस अवकाश का इस तरह का कोई फ़ायदा नहीं उठाया और सबके सब सारी रात खुदा की इबादत अराधना में लगे रहे।

सुबह हुई, इब्ने सा'द ने अपनी सेना ठीक की। हज़रत इमाम हुसैन अ. ने भी अपने छोटे से जुट की व्यवस्था की, सेना की शैली में मैमना (दायीं टुकड़ी) और मैसरा (बायीं टुकड़ी) के नायक नियुक्त

**(बक़िया पेज नं0 7.................पर)**

व्यय हो गया।

बूढ़ों के सिर काट लिए गए, युवकों को मृत्यु की गोद में सुला दिया गया, बच्चों के प्राण ले लिये गये, शत्रु के अत्याचार और बर्बरता का अन्तिम तीर शेष था। हुसैन अ. ने इसके लिए भी लक्ष्य खोज निकाला। रबाब की गोद से 6 महीने का बच्चा ले लिया। सबसे अन्त में अपनी गर्दन को भी सामने कर दिया। आपकी मृत्यु के बाद शहज़ादियों को बन्दी बना लिया गया। यह सब जो कुछ किया वह बहुत समझकर किया गया। हुसैन अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफ़लता पा सके। इन बलिदानों से मुसलमानों की आंखे खुल गयीं। उन्होंने वास्तविकता को पहचान लिया। इस्लाम और यज़ीदियत दुध और पानी की तरह अलग अलग हो गये। हुसैन बस यही चाहते थे कि लोग इस्लाम को पहचान लें..............समझ लें कि इस्लामी संस्कृति वही नहीं है जो दमिश्क की राजधानी में दिखाई देती है। जहां शराब की बोतलें रात दिन खुला करती है। तथा वेश्याओं का झुंड अंगड़ाइयां लिया करता है। जहां समस्त प्रजा से धन लेकर ख़लीफ़ा की रंग रलयों में व्यय किया जाता है। जहां ग़रीबों की आवाज़ें कोई सुनने वाला नहीं है, जहां न्याय का गला घोंटा जाता है।

हुसैन ने दिखला दिया कि इस्लाम की संस्कृति वह है जो कर्बला के मैदान में ला खड़ी की गयी। जहां एक हब्शी गुलाम भी घायल होकर घोड़े से गिरता है और इमाम को पुकारता है तो इमाम उसके सिरहाने जाते हैं तथा उसके सिर को उठाकर अपनी गोद में रखते हैं। इस प्रकार उस ग़ुलाम की आत्मा स्वामी की गोद में पड़े हुए शरीर से सदा के लिए अलग हो जाती है। यज़ीद के समान शक्तिवान उनके शासक हो सकते हैं तथा प्रत्येक जाति में उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु हुसैन के समान सत्य की रक्षा में सपरिवार बलिदान होने वाले विरला ही जन्म ले सकता है। हुसैनी मिशन जो कर्बला के मैदान में अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सका वह प्रत्येक काल में यज़ीद के समान शक्तिवान शासकों की पराजय के लिए पर्याप्त है परन्तु इसके साथ एक शर्त यह है कि संसार के लोग हुसैन अ. के कर्मों को स्मरण रखें तथा उस से शिक्षा प्राप्त करें।

(इमामिया मिशन लखनऊ का प्रकाशन नं0 229)



**(पेज नं0 09 का बक़िया ................)**

किये और सेना का अलमदार (ध्वज धारी) अपने भाई हज़रत अब्बास अ. को बनाया।

युद्ध का आरम्भ उमर सा'द ने इस तरह किया कि एक तीर कमान /धनुष के चिल्ले में जोड़ कर छोड़ा और इसके साथ ही चार हज़ार कमानें कड़कीं और उतने ही तीर आये जिसके बाद हुसैन अ. ने भी जानें न्योछावर करने वालों को ललकारा कि बस अब हुज्जत (प्रमाण) पूरी हो गयी (अर्थात अब समझौते की आशा मिट चुकी है और लड़े बिना कोई उपाय नहीं है।) कहां तीस हज़ार और कहां बहत्तर का छोटा सा गुट! मगर इन बहत्तर ने इस बहादुरी से मुक़ाबला किया कि आकाश और पाताल को अपने जियालेपन और शेरदिली का गवाह बना दिया। उनमें से किसी एक ने मैदान से क़दम नहीं हठाया। जब साथी सब (वीरगति पाकर) शहीद हो गये तो परिजनों की बारी आयी। इमाम हुसैन अ. के भान्जे, भतीजे, भाई एक एक करके शहीद हुए। आख़िर में अलमदार हज़रत अब्बास और मशहूर कथनानुसार, उनके बाद हज़रत इमाम हुसैन अ. के अट्ठारह बरस के कड़ियल जवान बेटे अली अकबर ने भी जो रसूल हज़रत मुहम्मद स. के बिल्कुल समरूप थे छुटने का दाग़ दिया। और सबसे अन्त में वह बेजोड़ बलिदान प्रस्तुत किया जो इतिहास में पहली और आख़िरी बार प्रस्तुत हुआ अर्थात छः महीने की जान अली असग़र अ. जो बाप के हाथों पर तीर से शहीद हुए। फिर स्वंय हज़रत इमाम हुसैन अ. तीन दिन की भूख प्यास में यादगार ओर बेमिसाल वीरता के साथ मुक़ाबला करने के बाद (अमर) शहीद किये गये। इमाम हुसैन अ. की शहादत के बाद खैमों (तम्बुओं) में आग लगा दी गयी; सामान लूटा गया ओर हरम (महिलाओं) को बन्दी बनाकर शहर शहर गांव गांव फिराया गया। यह सब कुछ हो गया मगर हुसैन अ. ने और उनके बाद किसी बच्चे ने भी यज़ीद के राज्य को माना नहीं।

यही है वह (अमर) बलिदान जिसकी याद मुहर्रम में हर साल मनायी जाती है और इस तरह कर्बला के अमर शहीदों का बरसाबरस शोक मातम होता है जो साढ़े तेरह सौ साल से सम्पन्न है और निश्चय ही जब तक आकाश पाताल है यह ग़म स्थापित रहेगा।



(1966 के एक उर्दू रेडियो व्याख्यान का हिन्दी रूपान्तरण)